अष्टांगिक मार्ग की प्रासंगिकता : व्यक्तित्व विकास के विशेष सन्दर्भ में

शैलेन्द्र वासनिक [1*], प्रो. भगवन्त सिंह [2]
[1] शोधार्थी, दर्शन एवं योग अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.),
[2] से.नि. आचार्य एवं अध्यक्ष, दर्शन एवं योग अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

शोध सारांश :–

व्यक्तित्व को परिभाषित करने के लिये व्यक्ति के समस्त बाह्य एवं आन्तरिक गुणों का अध्ययन आवश्यक है जो व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया में सहायक सिद्ध होगा। व्यक्तित्व विशेष लक्षणों का योग न होकर व्यक्ति के बाह्य एवं आन्तरिक गुणों की समग्रता है। व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया स्थिर न होकर परिवर्तनशील है। दार्शनिक सम्प्रदायों में व्यक्तित्व विकास का सम्बन्ध मानव के नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से है जिसके अनुसार व्यक्तित्व विकास का उद्देश्य न केवल बौद्धिक विकास वरन् मानव के सम्पूर्ण आत्मिक एवं नैतिक उत्थान हेतु मार्ग प्रशस्त कराना है जो उसे सांसारिक एवं आध्यात्मिक विकास की ओर समायोजित करने योग्य बनाए। आधुनिक युग में मानव विभिन्न संसाधनों का उपयोग कर भौतिक उन्नति करता जा रहा है किन्तु जीवन के परम् लक्ष्य की प्राप्ति में उसकी अपूर्णता बनी हुई है यह अपूर्णता व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती है। व्यक्तित्व विकास के गूढ़तम रहस्यों को खोजने तथा जीवन की सार्थकता हेतु अष्टांगिक मार्ग साधना पद्धति का ज्ञान अत्यन्त उपयोगी एवम् महत्वपूर्ण है।

अष्टांगिक मार्ग की प्रासंगिकता के आधार पर प्रस्तुत आलेख में व्यक्तित्व विकास को विकसित करने की सार्थकता पर विचार करने का प्रयास किया गया है। शारीरिक, मानसिक, संवेदनात्मक, सामाजिक एवम् आध्यात्मिक विकास के लिए अष्टांगिक मार्ग एक सम्यक् मार्ग है जिसका अनुसरण कर व्यक्तित्व विकास के साथ–साथ आदर्श समाज का निर्माण किया जा सकता है। अष्टांगिक मार्ग तथा व्यक्तित्व विकास के मध्य अटूट सम्बन्ध है। शोध आलेख के माध्यम से अष्टांगिक मार्ग का व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सकारात्मक प्रभाव प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कूट शब्द – व्यक्तित्व विकास, सम्यक, प्रज्ञा, शील, समाधि, अष्टांगिक मार्ग।

प्रस्तावना –

दार्शनिक सम्प्रदायों एवं व्यक्तित्व विकास के मध्य एक घनिष्ठ सम्बन्ध है साथ ही इनमें जीवन को सर्वप्रकारेण आनन्दमय बनाने हेतु साधन मार्ग भी सन्निहित है। यह मानव जाति मात्र की अमूल्य निधि होने के साथ–साथ मानव जीवन से सम्बन्धित ज्ञान–विज्ञान के बहुत से तत्त्वों को प्रकाशित करता है अतएव देश, काल एवं समाज की परिस्थिति एवं भिन्नता के कारण दार्शनिक सम्प्रदायों के स्वरूप में भी भिन्नता प्रदर्शित होती है परिणामस्वरूप भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों के विवेच्य विषय भी भौतिकता तथा आध्यात्मिकता के महत्व के अनुसार भिन्न–भिन्न है।

शाब्दिक रूप से व्यक्तित्व ''अंग्रेजी का शब्द Personality का हिन्दी रूपान्तरण है जो लैटिन भाषा के Persona शब्द से विकसित हुआ जिसका अर्थ 'नकाब' (Mask) है। यह Persona शब्द ग्रीक भाषा के Prosopon शब्द से लिया गया प्रतीत होता है जिसका अर्थ है 'आकृति' अथवा 'चेहरे का भाव'। इस शब्दार्थ के आधार पर 'व्यक्तित्व' का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप से है, अर्थात् जैसा हम उसे देखते हैं।''[1]

*Corresponding Author Email: shailendra.wasnik1507@gmail.com
Published: 28/07/2025
DOI: https://doi.org/10.70558/IJSSR.2025.v2.i4.30478
Copyright: @ 2025 The Author(s). This work is licensed under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

परन्तु व्यक्तित्व के इस अर्थ के सन्दर्भ में भारतीय ऋषियों, मनीषियों एवम् महापुरूषों के विचारों में असहमति एवम् असन्तुष्टि प्रदर्शित होती है। आदर्श व्यक्तित्व पुरूषार्थ–चतुष्टय में निःश्रेयस को परम–पुरूषार्थ मानता है। इस दृष्टि से विभिन्न भारतीय सम्प्रदायों में परम–पुरूषार्थ की प्राप्ति हेतु साधन मार्ग परिलक्षित है अर्थात् जो सूत्र या तत्त्व व्यक्तित्व विकास की सर्वांगीणता के निर्माण में सहायक है उसकी व्याख्या करना भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों का अभिप्राय है। भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों का मुख्य उद्देश्य विराट ब्रह्माण्ड के अद्भूत एवं असंख्य पदार्थो की समझ, मानव जीवन की स्थिति, सत्ता का विचार, मनुष्य के सुख–दुःख, पुण्य–पाप एवं जन्म–मरण इत्यादि रहस्यों की जिज्ञासा का समाधान प्रस्तुत कर मानव जीवन से सम्बद्ध समस्त पदार्थ जो आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक है उनका यथार्थ एवं तात्विक विश्लेषण कर मानव को आत्मसाक्षात्कार हेतु अभिप्रेय करना है।

जिस प्रकार चिकित्सा–शास्त्र में रोग, रोगों का कारण, आरोग्य और आरोग्य का साधन यह चार प्रतिपाद्य विषय विद्यमान है ठीक इसी प्रकार भारतीय मोक्षशास्त्रों जैसे– योग–दर्शन में चतुर्व्यूहवाद–हेय, हेयहेतु, हान तथा हानोपाय की अवधारणा ; सांख्य योग में जरा, मृत्यु, रोग तथा जन्म की अवधारणा तथा बौद्ध दर्शन में चार आर्य सत्य (दुःख, दुःख का कारण, दुःख निरोध एवम् दुःख निरोध मार्ग) की अवधारणा विद्यमान है। सिद्धार्थ को कई वर्षों की कठोर तपस्या के उपरान्त चार आर्य सत्यों की अनुभूति हुई, तभी वे 'बुद्ध' कहलाये। ''बुद्ध का अर्थ है– जानने वाला, जिसे ज्ञान का प्रकाश मिल गया है।''[2] 'गौतम' उनका कुलनाम था। इस तरह वह सिद्धार्थ से 'गौतम बुद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बौद्ध दर्शन की मुख्य शिक्षा 'चार आर्य–सत्य' है। इन चार आर्य–सत्यों में बुद्ध के सारे उपदेश सन्निहित है। ये चार आर्य–सत्य इस प्रकार है– दुःखम्, दुःख–समुदयः, दुःख–निरोधः तथा दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद। आर्य का अर्थ है– 'श्रेष्ठ' अथवा 'अलौकिक'। दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद, यह चतुर्थ आर्य–सत्य है। यही दुःख निरोध अर्थात् 'निर्वाण' तक पहुंचाने वाला मार्ग है। इस मार्ग को दुःख निरोध मार्ग भी कहा जाता है। इसी मार्ग को बौद्धमत में आर्य 'अष्टांगिक–मार्ग' कहा गया है जिसका क्रम इस प्रकार है– सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति व सम्यक् समाधि।

व्यक्तित्व विकास में अष्टांगिक मार्ग की अहम भूमिका है अष्टांगिक मार्ग का मुख्य उद्देश्य निर्वाण प्राप्ति है, जिसके माध्यम से व्यक्ति ज्ञान–चक्षु द्वारा अपने आप को देखे 'स्व' का निरक्षण करें, अपने भीतर के विकारों का स्व–मूल्यांकन के माध्यम से उपशमन करे यही सम्यक साधन मार्ग है एवं यही अनुभूतियों के स्तर पर 'स्व' का निरीक्षण है। जन्म–जन्मान्तरों से चित्त पर संस्कारों, विकारों की जो परते पड़ी और नए–नए विकार बनाते रहने का जो स्वभाव बन गया, उससे छुटकारा पाने के लिये अष्टांगिक मार्ग साधना पद्धति के अभ्यास की नितान्त आवश्यकता है जिसके माध्यम से आत्म–निरीक्षण या स्व–निरीक्षण का अभ्यास होता है।

व्यक्तित्व विकास में अष्टांगिक मार्ग की भूमिका –

बौद्ध शिक्षा से तात्पर्य है – सम्यक सम्बुद्ध की शिक्षायें और उन शिक्षाओं के गर्भ में छिपे ज्ञान के माध्यम से स्व–निरीक्षण कर स्वयं को सम्पन्न एवं समृद्ध बनाना। तथागत का दर्शन इन शिक्षाओं के अभिसमय (ज्ञान) में ही अन्तर्निहित है जो व्यक्ति सभी वस्तुओं की यथार्थता एवं सत्यता को जानता है वह तथागत है जो आत्मानुभूति के माध्यम से यह जानता है कि वस्तुएं जैसी है वैसे ही उन्हें जानना स्व–निरीक्षण का अभिसमय है ऐसा अभिसमय युक्त व्यक्ति समस्त वस्तुओं के प्रति अनुकूल व्यवहार करने में सक्षम होता है। दुनिया की प्रत्येक वस्तु, घटना एवं क्रिया आदि अनित्य, अनात्म व दुःख स्वरूप है। बौद्ध शिक्षा का मुख्य उद्देश्य दुःख तथा दुःख के उद्गम या स्त्रोत का विनाश करना है अतः सर्वप्रथम दुःख को समझना बौद्ध दार्शनिक सम्प्रदायों में महत्वपूर्ण माना गया है। दुःख के स्वरूप को समझकर ही श्रावक या साधक अपना उत्कर्ष करता हुआ निर्वाण को प्राप्त करता है जिसकी व्यक्तित्व विकास के सन्दर्भ में अत्यन्त

महत्वपूर्ण भूमिका है। अष्टांगिक मार्ग बौद्ध अनुयायियों की आचार–मीमांसा का चरम साधन है। दुःख निरोध प्रतिपद् यह चतुर्थ आर्य–सत्य अर्थात् अष्टांगिक मार्ग इस प्रकार है :–

''अयमेव अरियो अठ्ठगिको मग्गो संरयथीदं सम्मादिट्ठि, सम्मासंकप्पो,

सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामों, सम्मापासती, सम्मासमाधि ।।''[3]

अर्थात् इस अष्टांगिक मार्ग का पालन करने से निर्वाण की प्राप्ति होती है। इसी मार्ग को महात्मा बुद्ध ने ज्ञान की विशुद्धि के लिये तथा मार को मूर्छित करने के लिये आश्रयणीय बतलाया है। अष्टांगिक मार्ग तथा चार आर्य–सत्य की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में तथागत बुद्ध धम्मपद में कहते हैं :–

''मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा। विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानञ्च चक्खुमा ।।

एसोश्व मग्गो नत्थञो दस्सनस्स विसुद्धिया । एतं हि तुम्हे पटिवज्जथ मारस्सेतं पमोहनं ।।''[4]

अर्थात् निर्वाणगामी मार्गो में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है। लोक में जितने भी सत्य हैं उनमें आर्य–सत्य श्रेष्ठ है। सब धर्मो में वैराग्य श्रेष्ठ है और मनुष्य में चक्षुष्मान ज्ञानी बुद्ध श्रेष्ठ है। ज्ञान की विशुद्धि के लिये तथा मार को मूर्छित करने के लिये यही मार्ग (अष्टांगिक मार्ग) आश्रयणीय है।

बुद्ध का सबसे महान सिद्धान्त यही था कि मनुष्य को केवल अपने कल्याण से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए वरन् विश्व–कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। इसी उपदेश को तथागत ने अपने शिष्य आनन्द को संक्षिप्त रूप से सुनाया था जो इस प्रकार है –

''प्रयतस्वात्महिते जगद्धिते च।''

अर्थात् आत्म–कल्याण और जगत–हित के लिये प्रयत्न करो।

उनकी दूसरी विशेषता यह थी कि उन्होंने अपने उपदेशों को बुद्धि के आधार पर स्थापित किया और शिष्यों से कहा कि स्वर्ण परीक्षण की तरह ही उन उपदेशों की परीक्षा करके ही उनकों ग्रहण किया जाए, स्वयं उनके आदर के कारण मात्र से नहीं अर्थात् –

''तापाच्छेदाच्च निकषात् सुवर्णमिव पण्डिताः।

परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं गुणतो न तु गौरवात्।।''[5]

अष्टांगिक मार्ग का स्वरूप :–

अष्टांगिक मार्ग के आठो अंगो का स्वरूप एवं उनकी अवधारणा निम्नानुसार है –

1. **सम्यक् दृष्टि** – सम्यक् दृष्टि से तात्पर्य है – 'यथार्थ ज्ञान'। नैतिक कार्य हेतु ज्ञान की भित्ति आवश्यक होती है। आचार–विचार का परस्पर सम्बन्ध नितान्त घनिष्ठ होता है। विचार की भित्ति पर आचार आधारित होता है। आचार–मार्ग में सम्यक् दृष्टि पहला अंग माना गया है जो व्यक्ति अकुशल को एवं अकुशल मूल को तथा कुशल को एवं कुशल मूल को जानता हो वही सम्यक दृष्टि से सम्पन्न माना जाता है। कायिक, वाचित तथा मानसिक कर्म दो प्रकार के होते हैं – कुशल और अकुशल। इन दोनों का यथार्थ स्वरूप जानना ही 'सम्यक् दृष्टि' कहलाता है जिसका वर्णन मज्झिमनिकाय (सम्मादिट्ठि–सुत्त 1.1.9) में इस प्रकार है–

	अकुशल	**कुशल**
कायिक कर्म	प्राणातिपात (हिंसा)	अ–हिंसा
	अदत्तादान (चोरी)	अ–चौर्य

	मिथ्याचार (व्यभिचार)	अ—व्यभिचार
वाचिक कर्म	मृषा वचन (झूठ)	अ—मृषावचन
	पिशुन वचन (चुगली)	अ—पिशुन वचन
	परूष वचन (कटुवचन)	अ—कटुवचन
	सम्प्रलाप (बकवाद)	अ—असम्प्रलाप
मानसिक कर्म	अभिद्दा (लोभ करना)	अ—अलोभ
	व्यापाद (प्रतिहिंसा)	अ—अप्रतिहिंसा
	मिथ्या दृष्टि (झूठी धारणा)	अ—मिथ्यादृष्टि

अकुशल का मूल है— लोभ, दोष तथा मोह। इसके विपरीत कुशल का मूल है— अलोभ, अदोष तथा अमोह। इन कर्मों का सम्यक् ज्ञान रखने के साथ—साथ आर्य सत्यों— दुःख, दुःख समुदय तथा दुःख निरोध मार्ग को भलीभाँति जानना ही सम्यक् दृष्टि है। सम्यक् दृष्टि से सम्पन्न साधक यह जानने में समर्थ हो पाता है कि **'अविद्या'** के कारण ही मिथ्या दृष्टि का प्रादुर्भाव होता है एवं मिथ्या दृष्टि का नाश सम्यक् दृष्टि के माध्यम से ही हो सकता है।

2. **सम्यक् संकल्प —** सम्यक् संकल्प से तात्पर्य है — 'दृढ़ निश्चय करना'। सम्यक् संकल्प के मुख्यतः दो अवयव हैं— अशुभ संकल्प (त्याज्य)एवं शुभ संकल्प (स्वीकार्य)। इनमें साधक को यह संकल्प लेना होता है कि उनके सभी कार्यो में शुभ संकल्प सन्निहित हो जिसके माध्यम से साधक का मुख्य ध्येय निर्वाण प्राप्ति हो। सम्यक् संकल्प सम्यक् दृष्टि की ही उपज है यह त्याग के लिये तीव्र इच्छा के साथ—साथ सभी प्राणी मात्र के प्रति प्रेम पूर्वक जीवन व्यतीत करने की आशा (संकल्प) तथा यथार्थ मनुष्य जाति के निर्माण की महत्वकांक्षा है।

''आर्य—सत्यों के ज्ञान मात्र से ही कोई लाभ नहीं हो सकता जब तक कि उनके अनुसार जीवन बिताने का दृढ़ निश्चय न किया जाए जो अपना भला चाहते हैं, निर्वाण के आकांक्षी हैं, उन्हें सांसारिक विषयों की आसक्ति, दूसरों के प्रति विद्वेष और हिंसा इन तीनों का परित्याग करने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए। यह दृढ़ निश्चय सम्यक् संकल्प कहलाता है।''[6] वस्तुतः संकल्प साधक पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हैं जिससे उनमें अपने निर्धारित मार्ग पर चलने की शक्ति मिलती है।

3. **सम्यक् वाक् —** सम्यक् वाक् से तात्पर्य है — 'समुचित वचन'। मृषा वचन, पिशुन वचन, परूष वचन एवं सम्प्रलाप इन सबको त्यागना नितान्त आवश्यक है। सत्य से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है। जिन वचनों से दूसरों के ह्रदय को चोट पहुंचे, जो वचन कटु हो, दूसरो की निन्दा हो तथा व्यर्थ का बकवाद हो उन्हें कभी नहीं कहना चाहिए। सभी के प्रति मैत्रीभाव रखना चाहिए। इस संदर्भ में धम्मपद में कहा गया है —

''न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।

अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो।।''[7]

अर्थात् इस संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होते, अ—वैर (मैत्री) से ही शांत होते हैं यही सनातन का नियम है। मिथ्या संकल्प के सन्दर्भ में धम्मपद में कहा गया है —

''असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो।

ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कप्पगोचरा।।''[8]

अर्थात् जो असार को सार और सार को असार समझने वाले हैं, मिथ्या संकल्प मे पड़े वे सार को प्राप्त नही करते। सम्यक् संकल्प के सन्दर्भ में धम्मपद में कहा गया है –

''सारञ्च सारतो ञत्वा असारञ्च असारतो ।

ते सारं अधिगच्छन्ति सम्मासङ्कप्पगोचरा ॥''[9]

अर्थात् जो असार को असार और सार को सार समझे वे सम्यक् संकल्प से युक्त सार को प्राप्त करते हैं। निर्वाण के इच्छुक साधक को सम्यक् वाक् युक्त होकर नियंत्रित, शुभ, प्रिय, सत्य एवं शांति देने वाले वचन बोलना चाहिए तथा इसके विपरीत कटु, अप्रिय, अशुभ एवं असत्य वचन का त्याग करना चाहिए।

4. **सम्यक् कर्मांत –** सम्यक् कर्मांत से तात्पर्य है – 'उचित कर्म करना'। सम्यक् कर्मांत को पंचशील (प्राणतिपात, अदत्तादान, काममिथ्याचार, मृषावाद एवं सुरामेरेय्मद्द) का आधार माना गया है। व्यक्तित्व विकास हेतु बौद्ध साधना पद्धति में कर्म सिद्धान्त को अधिक महत्व दिया गया है। अकुशल कर्म करने वाले के सम्बन्ध में धम्मपद में तथागत कहते है –

''यो पाणमतिपातेति मुसावादैच भासति । लोके अदिन्नं अदियति परदारञ्च गच्छति ॥

सुरामैरेयपानं च यो नरो अनुयुञ्जति। इधेवमेसो लोकस्मि मूलं खनति अत्तनो ॥''[10]

अर्थात् जो जीव हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो चोरी करता है, जो पर स्त्री गमन करता है, मदिरा पीता है, वह इस संसार में अपनी ही जड़ स्वयं खोदता है अर्थात् वह विनाश को प्राप्त हो जाता है। आत्मविजय के सन्दर्भ में तथागत कहते हैं –

''अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।

अत्तनो व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥''[11]

अर्थात् आत्मविजय से तात्पर्य है कि अपने ऊपर विजय पाना ही मानव की अनन्त शान्ति का चरम साधन है। आत्मदमन इन कर्मों का विधान चाहता है, आत्मा ही अपना नाथ–स्वामी है। अपने को छोड़कर अपना स्वामी दूसरा नहीं। अपने को दमन कर लेने पर ही दुर्लभ नाथ (निर्वाण) को जीव पाता है। इस प्रकार सम्यक् कर्मांत के माध्यम से साधक को स्वामित्व (निर्वाण) की प्राप्ति होती है।

5. **सम्यक् आजीव –** सम्यक् आजीव से तात्पर्य है – 'न्यायपूर्ण जीविकोपार्जन करना'। जीविकोपार्जन के लिये उचित मार्ग का अनुसरण तथा निषिद्ध मार्ग का त्याग ही सम्यक् आजीव है अर्थात् मिथ्यारहित जीविका से भव की शरीर–यात्रा चलानी चाहिए। दूसरों को क्लेश देकर तथा दूसरों की हिंसा करके जीविकोपार्जन करना अनुचित है। ''यदि व्यक्ति पारस्परिक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपना जीविकोपार्जन करने में लगे तो समाज का वास्तविक मंगल होता है। उस समय के व्यापारों में तथागत बुद्ध ने पांच जीविकाओं को हिंसा प्रवण होने के अयोग्य ठहराया है – 1. सत्य वणिज्जा – हथियार का व्यापार, 2. सत्त वणिज्जा – प्राणी का व्यापार, 3. मंस वणिज्जा – मांस का व्यापार, यह सभी व्यापार अकुशल कर्म के श्रेणी में आता है तथागत के अनुसार इनका त्याग आश्रणीय है।''[12]

6. **सम्यक् व्यायाम –** सम्यक् व्यायाम से तात्पर्य है – 'नितान्त निर्दोष क्रियाशीलता'। ठीक प्रयत्न, शोभन, उद्योग तथा सत्कर्मों से युक्त भावना हेतु प्रयत्न करते रहना चाहिए। इन्द्रियों पर संयम, बुरी भावनाओं को रोकने और अच्छी भावनाओं के उत्पादन करने का प्रयत्न तथा उत्पन्न हुई अच्छी भावनाओं को कायम रखने का प्रयत्न सम्यक् व्यायाम कहलाता है। बिना प्रयत्न किये चंचल चित्त से शोभन भावनाएं

दूर भागती है और बुरी भावनाएं घर जमाया करती है। ''तथागत बुद्ध सम्यक् व्यायाम को सम्यक् प्रधान भी कहा है जो चार प्रकार के हैं – संवर प्रधान, प्रहाण प्रधान, भावना प्रधान तथा अनुसरण प्रधान। यहां प्रधान का अर्थ प्रयत्न या व्यायाम बतलाया गया है जिसका अनुसरण करने की नितान्त आवश्यकता साधक को होती है।''[13]

7. **सम्यक् स्मृति –** सम्यक् स्मृति से तात्पर्य है – 'ज्ञान विषयों का यथार्थ स्मरण'। भक्ति काल में सन्तों ने इसे 'सूरता' के रूप में भी अभिव्यक्त किया है। काया, वेदना, चित्त और मन के धर्मों की उचित स्थितियों का ज्ञान अर्थात् उनके मलिन, क्षण–विध्वंसी आदि होने के ज्ञान का सदा स्मरण करना सम्यक् स्मृति है। जिसका विस्तृत वर्णन 'दीघ–निकाय' के 'महासति पट्ठान' सुत्त में इस प्रकार है – ''स्मृति प्रस्थान चार हैं – क. कायानुपश्यना, ख. वेदानुपश्यना, ग. चित्तनुपश्यना, घ. धर्मानुपश्यना। काय, वेदना, चित्त तथा धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानना तथा उसकी स्मृति सदा बनाये रखना नितान्त आवश्यक होता है। काय मलमूत्र, केश तथा नख आदि पदार्थों का समुच्चयमात्र है। शरीर को इन रूपों में देखनेवाला पुरूष 'काये कायानुपश्यी' कहलाता है। वेदना तीन प्रकार की होती है – सुख, दुःख, न सुख न दुःख। वेदना के इस स्वरूप को जानने वाला व्यक्ति 'वेदना में वेदनानुपश्यी' कहलाता है। चित्त की नाना अवस्थाएँ होती हैं – कभी वह सराग होता है, कभी विराग; कभी सद्वेष और कभी वीतद्वेष; कभी समोह तथा कभी वीतमोह। चित्त की इन विभिन्न अवस्थाओं में उसकी जैसी गति होती है, उसे जानने वाला पुरूष 'चित्त में चित्तानुपश्यी' होता है। धर्म भी नाना प्रकार के हैं – क. नीवरण–कामच्छन्द (कामुकता), व्यापाद (द्रोह), स्त्यानमृद्ध (शरीर–मन की आलस्यता), औद्धत्य–कौकृत्य (उद्वेग–खेद) तथा चिकित्सा (संशय), ख. स्कन्ध, ग. आयतन, घ. बोध्यग, ङ. आर्य चतुःसत्य। इनके स्वरूप को ठीक–ठीक जानकर उनको उसी रूप में जानने वाला पुरूष 'धर्म में धर्मानुपश्यी' कहलाता है।''[14] सम्यक् समाधि के निमित्त इस सम्यक् स्मृति की विशेष आवश्यकता है। काय तथा वेदना का जैसा स्वरूप है उसका स्मरण सदा बनाये रखने से आसक्ति नहीं उत्पन्न होती। चित्त अनासक्त होकर वैराग्य की ओर बढ़ता है तथा एकाग्रता की योग्यता का सम्पादन करता है।

8. **सम्यक् समाधि –** सम्यक् समाधि से तात्पर्य है – 'चित्त की स्थाई एकाग्रता (निर्वाण)'। सम्यक् समाधि वह है जिसके माध्यम से मन के विक्षेपों को हटाया जा सके। जो व्यक्ति सम्यक् दृष्टि, सम्यक् वाणी, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम और सम्यक् स्मृति को प्राप्त करना चाहता है उसके मार्ग में पांच बाधाएं या बन्धन व्यवधान उत्पन्न करते हैं जो इस प्रकार है – लोभ, द्वेष, आलस्य, विचिकित्सा तथा अनिश्चय। इन बाधाओं को जो कि वास्तव में कड़े बन्धन ही है इनको जीत लेना या तोड़ देना आवश्यक है, इन बन्धनों से मुक्त होने का उपाय समाधि है। समाधि और सम्यक् समाधि इन दोनों में बहुत अंतर है, जहां समाधि से तात्पर्य है – केवल चित्त की एकाग्रता, इसमें संदेह नहीं है कि वैसे ध्यान साधना पद्धतियों को प्राप्त किया जा सकता है जिनके रहते ये पांच संयोजन या बन्धन स्थगित रहते हैं लेकिन ध्यान की ये अवस्थाएँ अस्थायी होती है इसलिये संयोजन या बन्धन भी अस्थायी तौर पर स्थगित रहते हैं। आवश्यकता है चित्त में स्थायी परिवर्तन लाने की, इस प्रकार स्थायी परिवर्तन सम्यक् समाधि के द्वारा ही लाया जा सकता है।

बुद्ध धर्म के तीन महनीय तत्व हैं – शील, समाधि तथा प्रज्ञा। शील तथा समाधि का फल है – प्रज्ञा का उदय। भवचक्र के मूल में 'अविद्या' विद्यमान है जब तक प्रज्ञा का उदय नहीं होता तब तक अविद्या का नाश नहीं हो सकता साधक का प्रधान लक्ष्य इसी प्रज्ञा की उपलब्धि में होता है जिसे प्राप्त कर साधक बुद्धत्व (निर्वाण) को प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है।

उपसंहार – मानव समाज में 'व्यक्तित्व', व्यक्ति में समाहित उन मनोदैहिक शीलगुणों का गत्यात्मक संगठन है जो समाज के प्रति उसके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करता है। समाजिक गतिविधियों के संचालन हेतु सुव्यवस्थित रूप से आदर्श व्यक्तित्व की संकल्पना की गई है। उस आदर्श–तत्त्व को प्राप्त करने की प्रक्रिया ही व्यक्तित्व विकास कहलाती है। व्यक्तित्व विकास का सम्बन्ध व्यक्ति के विचारात्मक, भावनात्मक एवं व्यवहारात्मक पहलुओं से है। यह एक आजीवन प्रक्रिया है जो मानव जीवन को सर्वप्रकारेण आनन्दपूर्ण

बनाने में सहायक है। जिसकी प्राप्ति हेतु ''अष्टांगिक मार्ग'' साधना पद्धति सहायक है इसके अनुसरण से आत्म–जागरूकता, आत्म–विश्वास, संचार–कौशल एवं अनुकूलनशीलता जैसे गुणों का 'स्वबोध' होता है। समाज में सकारात्मक बदलाव हेतु यह साधना पद्धति अद्वितीय है।

व्यक्तित्व विकास में अष्टांगिक मार्ग साधना पद्धति पूर्णरूपेण सक्षम एवं व्यवहारिक है। अष्टांगिक मार्ग साधना पद्धति मुख्यतः तीन भागों में विभक्त है – प्रज्ञा, शील एवं समाधि। जहां प्रज्ञा का उदय होना शील और समाधि पर आश्रित है। भवचक्र के मूल में अविद्या विद्यमान है। जब तक ज्ञान का उदय नहीं होता तब तक अविद्या का नाश नहीं हो सकता। साधक का परम लक्ष्य इसी ज्ञान (प्रज्ञा) की उपलब्धि में होता है जिसके माध्यम से साधक स्वयं को संयमित कर प्रज्ञा के माध्यम से विषय–वस्तुओं के मध्य संयोग एवं वियोग की स्थिति स्थापित करने हेतु सक्षमता प्राप्त करता है। आदर्श व्यक्तित्व प्राप्ति हेतु तथागत ने शील (काय शुद्धि) और समाधि (चित्त शुद्धि) पर विशेष बल दिया है जिसके माध्यम से प्रज्ञा का उदय होता है। तथागत कहते हैं – ''सब को स्वयं ही अपना दीपक बनना चाहिए किसी दूसरे की शरण न जाकर स्वयं आत्मा की शरण में जाना चाहिए। सब लोगों के आलस्यहीन होकर इस धर्म का संपादन करना चाहिए क्योंकि सारे संस्कार अनित्य और नाशवान हैं'' –

''अत्तदीपो अत्तसरणा अनन्नसरणा।

वयधम्मा संखारा अप्पमादेन सम्पादेथ।।''[15]

सन्दर्भ सूची :–

1. विद्याभूषण एवम् डी.आर.सचदेव. समाजशास्त्र के सिद्धान्त. नई दिल्ली : किताब महल, 2016, पृ.759
2. राधाकृष्णन्. भारतीय दर्शन. दिल्ली : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, 1966, पृ.318
3. संयुक्तनिकाय 5/2
4. धम्मपद 20/1–2
5. ज्ञानसार समुच्चय
6. ताराराम. बौद्ध दर्शन : आर्य–सत्य. नई दिल्ली : सम्यक् प्रकाशन, 2020, पृ.115
7. धम्मपद 1/5
8. वही 1/11
9. वही 1/12
10. वही 18/12–13
11. वही 12/4
12. नवीन, विश्वजीत कुमार. अष्टांगिक मार्ग और अष्टांग योग. वाराणसी : कला प्रकाशन, 2019, पृ.31
13. वही पृ.31
14. दीघनिकाय – (महासतिपट्ठान सुत्त – 2/9)
15. वही